Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

उपसंहार

मनुष्य की संवेदना अत्यंत व्यापक एवं गहरी है। सामाजिक जीवन के आरम्भ से अब तक मनुष्य ने जो भी स्वप्न देखे हैं, जो भी कार्य किए हैं, जो भी उसके अनुभव से जुड़े हैं, उन सभी को उसने शब्दबद्ध करने का प्रयास किया है। यह प्रक्रिया पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती आई है। ये सब उसके संस्कार के हिस्से हैं। मानव की इसी संस्कृति को हर काल में कला एवं साहित्य के जरिए अभिव्यक्त करने का प्रयास उसने किया है। यही सच्ची अभिव्यक्ति है। भारत की संस्कृति का परिचायक उसके इतिहास, परंपरा, साहित्य व नैतिक मूल्य हैं। समकालीन कविता ने इसी संस्कृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। इस प्रयास में उसने भारत के लोक जीवन को लेकर उसके विभिन्न रूपों का चित्रण कविता में किया है। भद्र एवं आभिजात्य भाषा एवं शब्दों को त्यागकर ग्रामीण शब्दावलियों, लोकोक्तियों, मुहावरों को लेकर कविता में प्रयोग किया है।

मनुष्य ने आज तक जो भी सृजनात्मक कार्य किए हैं वह सब उसकी संस्कृति है। अपने जीवन की जटिलताओं, विषमताओं तथा अंतर्विरोधों से निरंतर संघर्षरत होकर ही मनुष्य ने अपनी संस्कृति का निर्माण किया है। भारत की संस्कृति ने ऐसी ही विकासात्मक प्रक्रिया से होकर सार्वभौमिक रूप ग्रहण किया है। इसकी ग्रहणशीलता, सह–अस्तित्व, समन्वयशीलता, गत्यात्मकता, धर्म–निरपेक्षता आदि गुण इसे एक वैश्विक लोकतांत्रिक संस्कृति बनातेहैं। भारत की संस्कृति के विकास में अनेक जातियों का योगदान रहा है। आर्य, द्रविड़, युनान, शक, कुषाण, आभीर, गुर्जर, हूण, अरब आदि जातियों के विविधोन्मुखी जीवन

व्यापार ने भारत की संस्कृति का निर्माण किया है। इसकी विकास प्रक्रिया में मुख्यधारा की परंपराओं के साथ–साथ स्थानीय या लौकिक परंपराओं की भूमिका अपरित्याज्य है। अतः निरंतर बदलते सामाजिक परिस्थिति और मूल्यों को मद्देनज़र रखते हुए यह एक नयी और उन्नत आस्था की खोज है जो मानवीय जीवन पद्धतियों को एक साकार रूप देती है।

भारत की संस्कृति की पहचान उसकी सार्वभौमिकता एवं धर्मनिरपेक्षता में है। यही कारण है कि यहॉ अन्तर–सांस्कृतिक आदान–प्रदान देख सकते हैं। भारत की संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं – प्राचीनता, समन्वयशीलता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, अध्यात्मिकता, गत्यात्मकता, विश्व कल्याण की भावना, अहिंसा, परोपकारपरायणता, त्याग भावना, सदाचार पालन, सर्वांगीणता, धर्म–निरपेक्षता आदि। भारत की संस्कृति की पहचान उसके मूल्य, परंपरा तथा इतिहास द्वारा किया जा सकता है। समकालीन कविता खासकर सन् 1980 के बाद की कविता ने इसे अधिक महत्व दिया है।

सन् 1980 और 2000 के बीच की कविताओं में सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग बदलते सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप हुआ है। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न उपभोगवादी संस्कृति ने अपसंस्कृति को जन्म दिया। भारत की राजनीति मूल्यहीन हो गई। यहॉकी सामाजिक परिस्थिति बदत्तर होती गई। जनता में संवेदनशीलता खत्म होती गई। भ्रष्टाचारी नेताओं के कारण देश की आर्थिक स्थिति बदत्तर होती गई। इस मूल्यच्युति के विरुद्ध समकालीन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक घटकों को अपनी कविता में शामिल कर

जनता को नष्ट हो रही संवेदनशीलता के बारे में बताने का प्रयास किया है। यह वह काल है जब हिन्दी कविता अपने वादों के खोल से बाहर आकर सामान्यजन से जुड़ने का प्रयास कर रही थी। भद्र समाज के अन्तर्मन की फैंटसीकरण से हटकर साधारण जनता के सुख–दुख से जुड़ रही थी। भ्रष्ट राजनीति, भूमण्डलीकरण से उत्पन्न उपभोगक्तावादी संस्कृति, साधारण जनता का शोषण, सांप्रदायिकता आदि स्थितियों के कारण इस काल की कविता को बाहर और भीतर से सक्षम होना था। अतः समकालीन कविता ने प्रतिरोध का मार्ग अख्तियार ली।

1970 के दशकों में बेरोजगारी, शोषण, किसानों की आत्महत्या, भुखमरी आदि से कांग्रेस सरकार के विरुद्ध जन आक्रोश उमड़ रही थी। नक्सलवादी आन्दोलन का उदय होने से सरकार को सर्वत्र संघर्ष का सामना करना पड़ा। विरोधी पार्टियों के जुलूस, छात्र संगठनों का आंदोलन, किसान आन्दोलन आदि देश के कई हिस्सों में बड़े पैमाने परआन्दोलन हुए।सरकार ने इन आन्दोलनों को लाठी और गोलियों से दमन किया। इन सब के फलस्वरूप 1975 में आपातकाल की घोषणा हुई। तत्पश्चात् खालिस्तान की मॉग, सिक्खों का दमन, ब्लू स्टार ऑपरेशन, प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी की हत्या, सिक्ख हत्याकांड, सोवियत यूनियन का विघटन, आर्थिक तंगी, उदारीकरण, बाबरी मस्जिद का खण्डन, इस्लाम व हिन्दू उग्रवादियों का पुनरुदय, सांप्रदायिक दंगे, काला धन आदि घटनाओं से भारतीय समाज को बहुत बड़ा झटका हुआ। संवेदनहीनता, मूल्यहीनता, अपसंस्कृति से भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक घटन में दरारें आ गई। इस सांस्कृतिक च्युति के विरुद्ध हिन्दी कविता ने प्रतिरोध खड़ा किया।

हिन्दी कविता अपने उत्पत्ति काल से ही मूलतः प्रगतिशील रही है। इसने हमेशा समाज के साथ, जनता के साथ जुड़ने का प्रयास किया है। हिन्दी कविता के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि उसमें पुरानी व्यवस्था का विरोध और जनतंत्र की तरफ बढ़ने की ख्वाहिश है। हिन्दी कविता ने भारत की बदलती सामाजिक परिस्थिति के साथ–साथ अपने शब्द, प्रतीक, बिम्ब एवं घठन को तथा अपने अभिव्यक्ति के तौर–तरीकों को बदला है। हिन्दी कविता अपने आदिकाल से ही बदलती सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढाला है। यह विषयगत व शैलीगत दृष्टि से विविधोन्मुखी रही है। इसने हमेशा सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में छिपे शोषक तत्वों का विरोध किया है। एक प्रतिपक्ष की भूमिका निभाई है। शोषित जनता के स्वर से स्वर मिलाया है। शोषक वर्ग के षड्यंत्र का पर्दाफाश किया है। हिन्दी के इस प्रगतिशील परंपरा से जुड़कर समकालीन कविता ने सामाजिक पक्षधरता की रचना की है। इसने मध्यवर्ग का छद्मपूर्ण व्यवहार, उच्च वर्ग का शोषण तंत्र, निम्न वर्ग की पीड़ा एवं संघर्ष, रागात्मक संबंधों के विस्थापन का दुःख, बच्चों और स्त्रियों के प्रति चिंता, लोकधर्मी परंपरा के प्रति आस्था और राजनीति के कुत्सित चेहरे का चित्रण कर अपनी सामाजिक, राजनीति एवं सांस्कृतिक दायित्व का निर्वहन किया है। इसने लोक भाषा एवं उसके शब्द भंडार का प्रयोग कर शहर और अंचल में रहने वाले सामान्य जनता के जीवन संघर्ष को स्वर दिया है।

यह कविता वैचारिक प्रतिबद्धता में विश्वास रखती है। यह समय और संस्कृति से निरन्तर मुठभेड़ करती है और इंसान में विश्वास, उम्मीद,

संघर्ष की भावना एवं सपने देखने की अनवरत इच्छा को बनाए रखना चाहती है। यह आधुनिक बोध को अपने सही मायने में चित्रित करता है। समकालीन कविता कल्पनाप्रवण जीवन दृष्टि से सृष्टि को प्रतिगामी शक्तियों से सुरक्षित रखने को प्रतिबद्ध है। इसने भाषा के मृद स्वाद को पुनर्जीवित कर कविता के घठन को कविता के वैचारिक पक्ष का सहचर बनाने का प्रयास किया है। समकालीन कविता में एक सहज निडरता, गहराई और संघर्ष का एक व्यापक फलक दिखाई पड़ता है जो विचारों की व्यापक पड़ताल से निर्मित हैं। यह जीवन बाहरी तामझाम और छद्म को दिखाकर जनता को भ्रमजाल में फॅसाना नहीं चाहती बल्कि यह इन सबसे साधारण जनता को मुक्त कर सच को पूरी समग्रता से और गहराई से चित्रित कर मानव संघर्ष को एक नई राह देना चाहती है।

अतः यह भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखना चाहती है। सन् 1980 के बाद की हिन्दी कविता में इसी सांस्कृतिक अस्मिता को आवाज़ देने की कोशिश हुई है। इसने बाज़ार के तामझाम से दूर जीवन की नैसर्गिकता को प्रस्तुत किया है। साम्राज्यवादी शक्तियों के उपभोक्तावादी षड्यंत्र का अनावरण किया है। इसने मानवीय संबंधों के महत्व पर जोर दिया है। भारत की संस्कृति के मूल तत्वों को ग्रहण कर उसकी गरिमा को बचाए रखना समकालीन कविता का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है। यह संस्कृति आभिजात्य न होकर लोकधर्मी है। साधारण जनता के जीवन संघर्ष को चित्रित करने वाली है। समकालीन कविता जीवन की जड़ों को पुष्ट करने वाली कविता है। वह भारतीय परंपरा के जर्जर मूल्यों को त्यागकर मानवीय व सकारात्मक मूल्यों को ग्रहण करते हुए समय के साथ उसमें नयापन जोड़ने की कोशिश भी करती है।

इन कविताओं में वंचितों के स्वर सुने जा सकते हैं। यह दमनकारी सत्ता के शोषण और फासीवाद के विरुद्ध एक बुलन्द आवाज़ है। यह कभी किसानों व मज़दूरों के जीवन का आत्मसंगीत गाती है तो कभी लोक भाषा के मिठास में खेतों–खलिहानों, अंचल के पगडंडियों से गुज़रती है। यह कविता प्रकृति का वर्णन करती है परन्तु यह वर्णन कोरी प्रकृति का चित्रण न होकर उसमें मनुष्य की रागात्मक संबंधों का चित्रण भी है। समकालीन कवि यह पहचानते हैं कि भारत की संस्कृति उसके गॉवों में बसी है, अतः वे लोक संगीत के धुन में मग्न होकर मनुष्य और प्रकृति के साथ घुलमिल कर इंसान के सुख–दुख का राग अलापते हैं।

सन् 1980 और 2000 के बीच बहुत सी ऐसी रचनाएँ आईं जो भारत की संस्कृति की सही पहचान कर उन तत्वों को अपनी कविताओं के जरिए साधारण जनता के संघर्ष, उसके जीवन के सुख–दुख के बीच चित्रित किया है। 'मगर एक आवाज', 'नये इलाके में', 'नीम रोशनी में', 'नेपथ्य में हॅसी', 'शब्द और शताब्दी', 'अनुभव के आकाश में चॉद', 'ताख पर दियासलाई', 'दो पंक्तियों के बीच', 'आवाज़ भी एक जगह है', 'पत्थर की बेंच', 'डूबा सा अनडूबा तारा' आदि कुछ उदाहरण हैं। समकालीन कवि हमेशा अपने परिवेश के प्रति सजग हैं, इसलिए वह सत्ता के हर दुष्चक्र से वाकिफ हैं और इसके विरुद्ध जनता को जाग्रत करता रहते हैं।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप कईं विघटनवादी शक्तियों का उदय हुआ। बाज़ारवादी संस्कृति पनपने लगी। हमारे परंपरागत मूल्यों का क्षरण होने लगा। मनुष्य में संवेदना, इंसानियत, भाईचारा, अहिंसा,

सहअस्तित्व, धर्म एवं जातिगत समभाव नष्ट होने लगे। इंसान केवल अपनी व्यक्तिगत दायरे में सिमटने लगा। उदारवादी अर्थव्यवस्था ने भारत के ग्रामीण उद्योगों को नष्ट कर दिया। खेती और कुटीर उद्योगों को छोड़ लोग शहरों में मज़दूर बनकर आने लगे। व्यक्ति अपने समाज और प्रकृति से दूर विस्थापित हो गया। जन सामान्य की यही पीड़ा एवं उसके दैनंदिन संघर्ष को समकालीन कवियोंने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी हैं। संवेदनहीनता एवं मूल्यहीनता के इस समय में समकालीन कविता ने व्यक्ति के घर, परिवार एवं मूल परिवेश को लेकर कविताएँ रची हैं। समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता उसकी भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक आदि में प्राप्त होती हैं।

सन् 1980 के बाद कविता की शैली, विषयवस्तु एवं शब्द योजना में बदलाव आए। कविता का केन्द्र उसके पूर्ववर्ती काव्य प्रवृत्ति – राजनीति, से हटकर गॉव, लोक संस्कृति, प्रकृति, पारिवारिक संदर्भ आदि में आ गई। कवि की चुनौतियॉ बढ़ने लगीं– भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, सांप्रदायिकता, विघटनवाद, देशी भाषा का अवमूल्यन आदि। शोषक तत्व बाज़ार के तामझाम में छुपकर, साधारण लोगों को इसके छद्म आकर्षणों में फँसाकर, उनका शोषण कर रही हैं। समकालीन कविता मनुष्य की संवेदना को जगाकर उसे इस कृत्रिम दुनिया से बाहर लाना चाहती है, वह दुनिया जहॉउसका अस्तित्व, उसके मूल्य सब खोखले बन जाएँगे और व्यक्ति बाज़ार का दास बन जाएगा। इस परिस्थिति में यह इंसान की आत्मीयता एवं आत्मविश्वास को नष्ट कर उसे महज़ अंधी उपभोगी वस्तु में तब्दील कर देता है। अतः समकालीन कविता भारत की संस्कृति के मूल सिद्धांतों एवं मूल्यों के सहारे मनुष्य को इस अवमूल्यन से बचाना

चाहती है। वह अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए तैयार है। सन् 1980 और 2000 के बीच भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में जो बदलाव आए हैं, उसका सीधा प्रभाव तत्कालीन कविता पर पड़ा है और इस परिवर्तन को समकालीन कवियों ने बारीकी से समझकर अपनी कविताओं में सही तरह से इसकी अभिव्यक्ति की है। इस काल के प्रमुख कवि हैं – लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल, गिरिधर राठी, राजेश जोशी, कुमार विकल, अरुण कमल, सुदीप बैनर्जी, असद जैदी, भगवत रावत, चन्द्रकांत देवताले, प्रयाग शुक्ल, ज्ञानेन्द्रपति, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी, मदन कश्यप, कुमार अम्बुज, पंकज चतुर्वेदी, लीलाधर मंडलोई, एकांत श्रीवास्तव, बद्रीनारायण, हेमंत कुकरेती, विनोद कुमार शुक्ल, नीलाभ, बोधिसत्व आदि। आज बाज़ारवाद एवं सांप्रदायिकता भारतीय समाज एवं संस्कृति को खण्डित कर रही है। इसके खिलाफ समकालीन कविता एक प्रतिरोध के रूप में तथा सशक्त विकल्प के रूप में खड़ी है, साथ ही हमारे मूल्यों, सांस्कृतिक परंपरा एवं विरासत के प्रति वे जागरूक भी हैं।